थ

थॉमस हॉब्स

(Thomas Hobbes)

भौतिकवाद के दार्शनिक संस्थापकों में से एक थॉमस हॉब्स (1588–1679) को उनकी शाहकार रचना *लेवायथन* के कारण पश्चिमी राजनीतिक दर्शन की आधारशिला रखने का श्रेय दिया जाता है। पिछली तीन सदियों से राजनीति विज्ञान के छात्रों के लिए हॉब्स का अध्ययन अनिवार्य रहा है। मनुष्य की प्रकृति से संबंधित उनके सिद्धांत दार्शनिक मानवशास्त्र के क्षेत्र में आज तक प्रभावी माने जाते हैं। उनकी बुनियादी मान्यता यह थी कि मनुष्य अपनी विनाशकारी प्रवृत्तियों का दास है, इसलिए वह लम्बे समय तक और बड़ी संख्या में सामूहिक रूप से तभी रह सकता है जब उसकी इन प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर सकने वाली मज़बूत सरकार का उस पर शासन हो। हॉब्स कहते हैं कि मनुष्य की मुक्ति इसी हक़ीक़त को समझ लेने में निहित है। *लेवायथन* के ज़रिये जैसे ही हॉब्स की यह थीसिस सामने आयी, उनकी प्रशंसा और निंदा का ताँता लग गया। दरअसल, वे बेहद साहसी चिंतक और अत्यंत प्रभावशाली लेखक थे। उन्होंने अपने विचारों के लिए कई बार अपनी जान पर आये ख़तरे की भी चिंता नहीं की। राजनीति और राजनीतिक व्यवहार से संबंधित दर्शन के सभी परवर्ती अध्ययन उनके ऋणी हैं।

विल्टशायर, इंग्लैंड में जन्मे हॉब्स की माँ का बचपन में ही देहांत हो गया। उनके पिता उन्हें अपने छोटे भाई के हवाले करके अपनी ज़िंदगी जीने में मशगूल हो गये। हॉब्स की प्रतिभा को उनके एक स्कूलमास्टर ने पहचाना। उन दिनों ऑक्सफ़र्ड जैसे विश्वविद्यालय में भी पाठ्यक्रम पर मध्यकालीन वितण्डावादी दर्शन छाया हुआ था। हॉब्स ने उसमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। उन्होंने बीए की डिग्री भी पूरी नहीं की, और कैवेंडिश परिवार के बेटे विलियम को ट्यूशन पढ़ाने की नौकरी करने लगे। विलियम के साथ ही उन्हें 1610 में युरोप का दौरा करने का मौक़ा मिला। इसी दौरान उन्होंने गैलीलियो से मुलाकात की। बेकन और देकार्त के सम्पर्क में आये। वैज्ञानिक और आलोचनात्मक पद्धतियों पर महारत हासिल की। क्लासिक ग्रीक और लैटिन लेखकों का अध्ययन किया। इसी के परिणामस्वरूप हॉब्स थ्युसिडाइडिस द्वारा रचित *हिस्ट्री ऑफ़ द पेलोपोनेशियन वार* का सीधे यूनानी पांडुलिपि से अंग्रेज़ी में अनुवाद कर पाये जो बहुत मशहूर हुआ। इसी दौरान हॉब्स ने द *एलीमेंट्स ऑफ़ लॉ नेचुरल ऐंड पॉलिटिक* की रचना की, और देकार्त के प्रोजेक्ट *मेडिटेशंस द प्रीमा फिलोसोफ़ीया* की आलोचना लिखी जो देकार्त के उत्तर के साथ 1637 में देकार्त की महान रचना *डिस्कोर्स द ला मैथड* में प्रकाशित हुई। अपनी ख़ास तरह की जीवन स्थितियों के कारण बौद्धिक विकास की डगर पर कुछ देर से अग्रसर हुए हॉब्स को इस समय तक विश्वास हो गया था कि वे अब ख़ुद को दार्शनिक और विद्वान कह सकते हैं। उन्होंने मानव समाज (द *साइव*), मानव देह (द *कोरपोर*) और मानव प्रकृति (द *होमाइन*) पर तीन पुस्तकें लिखीं जो एक ही रचना के तीन खण्ड थे।

हालाँकि हॉब्स ने कई पुस्तकें लिखीं, पर उनके विचार सर्वाधिक स्पष्टता और सम्पूर्णता में *लेवायथन* के ज़रिये ही सामने आये। इस रचना में व्यक्त राज्य और वैध शासन से संबंधित अवधारणाएँ सामाजिक समझौते के विचार पर आधारित हैं। यह समझना ज़रूरी है कि हॉब्स इंग्लैण्ड के गृह युद्ध और सत्रहवीं सदी की वैज्ञानिक क्रांति के युग में सक्रिय थे। इन दोनों बातों का उनके विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

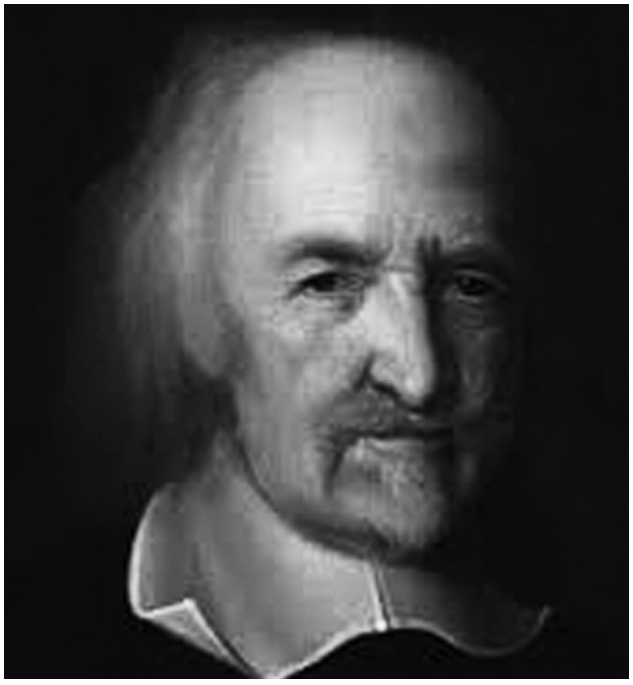

थॉमस हॉब्स (1588–1679)

उन्होंने गैलीलियो, फ्रांसिस बेकन और रेने देकार्त से वैज्ञानिक पद्धति प्राप्त की। वे यूनानी ज्यामितिविद् युक्लिड की रचना *एलीमेंट्स* से भी बेहद प्रभावित थे। इंग्लिश गृह युद्ध ने उनके सामने राजनीतिक स्थिरता और शांति-व्यवस्था की चुनौती पेश की। हॉब्स का ख़याल था कि गणितीय और ज्यामितीय विधियों के आधार पर किया गया चिंतन एक स्थिर राज्य और शांतिपूर्ण समाज की गारंटी कर सकता है।

बेकन के प्रभाव में आकर हॉब्स 1630 तक मान चुके थे कि समग्र प्राकृतिक व्यवस्था को मस्तिष्क या चेतना जैसे हवालों के बिना केवल 'बॉडी' या देह के रूप में समझा जा सकता है। हर मनुष्य का शरीर एक घड़ी से मिलता-जुलता जटिल मैकेनिज़म भर है जिसमें हृदय स्प्रिंग की और स्नायु तारों की भूमिका निभाते हैं। शरीर के जोड़ वे पहिये हैं जिनसे इस देह को गति मिलती है। संवेदी तत्रों के ज़रिये इस देह को बाह्य जगत के उद्दीपन प्राप्त होते हैं जिसके आधार पर उसका व्यवहार निर्धारित होता है। आनंददायक उद्दीपन कामनाएँ पैदा करते हैं और देह को प्राणदायक गति मिलती है। हॉब्स इसे 'फ़ेलिसिटी' (परमानंद) क़रार देते हैं जिसे और प्राप्त करने की इच्छा होती है। प्राणदायक गति को रोकने वाले उद्दीपन पीड़ाजनक होते हैं जिन्हें मनुष्य ग्रहण करने से बचता है। अच्छे और बुरे में यही अंतर है। बुद्धि का काम है अच्छे उद्दीपन को प्राप्त करने और बुरे उद्दीपन से बचने की युक्तियाँ करना। मृत्यु का अर्थ है 'फ़ेलिसिटी' का अंत।

इस समझ के आधार पर हॉब्स ने यह भौतिकवादी और आनंदवादी निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य का उद्देश्य अधिकतम आनंद और कम से कम पीड़ा भोगना है। अगर दूसरे के आनंद में मनुष्य को सुख मिल सकता है, तो हॉब्स के अनुसार वह परोपकार के लिए भी सक्षम है। लेकिन, अगर संसाधन कम हुए या किसी क़िस्म का भय हुआ, तो मनुष्य आत्मकेंद्रित और तात्कालिक आग्रहों के अधीन हो कर परोपकार को मुल्तवी कर देगा। ऐसी स्थिति में उसे सरकार का नियंत्रण चाहिए, वरना वह अपने सुख को अधिकतम और दु:ख को न्यूनतम करने के अबाध प्रयास करते हुए सभ्यता और संस्कृति से हीन प्राकृतिक अवस्था में पहुँच जाएगा। जो कुछ उसके पास है, उसे खोने के डर से मनुष्य शक्ति के एक मक़ाम से दूसरे मक़ाम तक पहुँचने की कोशिशों में लगा रहेगा जिसका अंत केवल उसकी मृत्यु से ही हो सकेगा। अगर मज़बूत राज्य ने उसकी इन कोशिशों को संयमित न किया तो मानव जाति प्राकृतिक अवस्था में पहुँच जाएगी जहाँ हर व्यक्ति दूसरे के दुश्मन के रूप में परस्पर विनाशकारी गतिविधियों में लगा होगा। मनुष्य को नियंत्रित करने वाला यही परम शक्तिशाली और सर्वव्यापी राज्य हॉब्स के शब्दों में *लेवायथन* है। इस पुस्तक के पहले संस्करण के आवरण पर एक दैत्याकार मुकुटधारी व्यक्ति का चित्र उकेरा गया था जिसकी आकृति छोटी-छोटी मानवीय उँगलियों से बनी थी। इस दैत्याकार व्यक्ति के एक हाथ में तलवार थी, और दूसरे में राजदण्ड।

हॉब्स को कोई शक नहीं था कि अगर यह दैत्याकार हस्ती लेवायथन मनुष्य को शासित नहीं करेगा तो वह शांति और व्यवस्था हासिल करने के तर्कसंगत निर्णय पर नहीं पहुँच सकता। उस सूरत में मनुष्य एक-दूसरे को हानि न पहुँचाने के परस्पर अनुबंध पर भी नहीं पहुँच पायेगा। तर्कों की यह शृंखला हॉब्स को दिखाती है कि मनुष्य एक आपसी समझौते के तहत एक समाज रचता है जिसमें हर कोई अपना हित साधना चाहता है और इसीलिए दूसरों से क़रार करता है कि वह किसी दूसरे के हित पर चोट नहीं करेगा बशर्ते बदले में उसके हित पर चोट न की जाए।

हॉब्स का विचार था कि इस समझौते का उल्लंघन न हो, इसलिए एक सम्प्रभु सत्ता की ज़रूरत पड़ेगी ताकि सार्वजनिक शांति और सुरक्षा की गारंटी की जा सके। यह सम्प्रभु केवल ताक़त के डर से ही अपनी सत्ता लागू नहीं करेगा। हॉब्स ने *लेवायथन* के दूसरे अध्याय 'ऑफ़ द कॉमनवेल्थ' में कई तरह के सम्भव संवैधानिक रूपों की चर्चा की है। लेकिन, सिद्धांतत: हॉब्स अविभाजित सत्ता के पक्ष में नज़र आते हैं। इसके लिए उन्हें राजशाहीनुमा सत्ता की वकालत करने में भी कोई हर्ज नहीं लगता।

हॉब्स की निगाह में यह सम्प्रभु निरंकुश नहीं होगा क्योंकि स्वयं को क़ायम रखने लायक परिस्थितियाँ सुनिश्चित

करने के लिए उसे अपनी प्रजा को एक हद तक (आंतरिक ख़तरे और बाह्य अशांति से उसे सुरक्षित रखने के उद्देश्यों के मुताबिक़) आज़ादी भी देनी होगी। भौतिक जिंसों और समृद्धि का वितरण इस तरह सुनिश्चित करना होगा जिससे उस टकराव के अंदेशे हमेशा ठंडे होते रहें जो परस्पर लेन-देन की प्रक्रिया से अक्सर पैदा होते रहते है। हॉब्स का ख़याल था कि धर्म निजी मामला है, पर उसके सार्वजनिक पहलुओं को पूरी तरह राज्य के मुखिया के फ़ैसले पर छोड़ देना चाहिए। राज्य का मुखिया ही चर्च का मुखिया होना चाहिए। बाइबिल जिन मामलों में स्पष्ट निर्देश नहीं देती, वहाँ राज्य के मुखिया का निर्देश अंतिम समझा जाना चाहिए। अपने इन्हीं विचारों के कारण हॉब्स ने कैथॅलिक चर्च को अंधकार के साम्राज्य की संज्ञा दी, क्योंकि वह अपने अनुयायियों से राज्य के प्रति वफ़ादारी से भी परे जाने वाली वफ़ादारियों की माँग करता है। उन्होंने शुद्धतावादियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी जो अंत:करण के आधार पर राज्य के ख़िलाफ़ खड़े होने की अपील करते थे।

हॉब्स का मतलब साफ़ था कि अगर शांति-व्यवस्था के साथ रहना है तो राजकीय प्राधिकार के उल्लंघन से बाज़ आना होगा। ज़रूरी नहीं कि राज्य की सम्प्रभुता का प्रतीक कोई व्यक्ति ही हो। वह किसी सभा और किसी संसद की सम्प्रभुता भी हो सकती है। इस लिहाज़ से हॉब्स के सिद्धांत में संसदीय सम्प्रभुता के लिए भी गुंजाइश है।

1666 में हाउस ऑफ़ कामंस में नास्तिकता के ख़िलाफ़ विधेयक लाया गया जिस पर विचार करने के लिए बनी समिति को *लेवायथन* से संबंधित सूचनाएँ जमा करने का अधिकार देने पर चर्चा हुई। कुल मिला कर नतीजा यह हुआ कि उसके बाद हॉब्स का कोई ऐसा लेखन प्रकाशित नहीं हो पाया जिसका विषय मानवीय आचरण हो। लेकिन, एक दार्शनिक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा फैलती चली गयी। पक्षाघात से हुई मृत्यु तक ज्ञान के देशी-विदेशी साधक उनके प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए उनसे भेंट करने आते रहे।

हॉब्स के विचार समाज-विज्ञान की दुनिया में हुई कई बहसों के केंद्र में हैं। उनके द्वारा वर्णित मनुष्य की 'प्रकृत अवस्था' को अक्सर आलोचना का निशाना बनाया जाता है। तर्क दिया जाता है कि अगर मनुष्य वास्तव में इसी अवस्था में होने के कारण 'सामाजिक समझौता' क़ायम करने की तरफ़ जाता है, तो ऐसे सामाजिक समझौते के विफल होने के अंदेशे ही अधिक हैं। और अगर प्रकृत अवस्था हॉब्स द्वारा किये गये वर्णन के मुताबिक़ नहीं है तो फिर सामाजिक समझौते की ज़रूरत ही क्या है। कई विद्वानों ने हॉब्स के विचारों को 'रैशनल चॉयस' या 'बुद्धिसंगत चयन' पर आधारित राजनीतिक समझ का मुख्य पुरोगामी क़रार दिया है। कुछ ने लेवायथन के मुख्य तर्कों को 'गेम थियरी' के आईने में देखने की कोशिश की है। हॉब्स द्वारा प्रवर्तित प्रजा और सम्प्रभु के संबंध (सम्प्रभु प्रजा के एजेंट है और वह जो कुछ करता है वह प्रजा के कहने और ज़रूरत पर करता है) की भी आलोचना हुई है। इस दावे के पहले हिस्से को स्वीकार करने में विद्वानों को दिक़्क़त नहीं है, पर दूसरे पर उन्हें शक है। हॉब्स यह सवाल तो उठाते हैं कि नागरिक अपने एजेंट की तरह काम करने वाली सरकार को कैसे नियंत्रित करेंगे, पर इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर मुहैया नहीं कराते।

देखें : अधिकार, अधिकार : सैद्धांतिक यात्रा, अरस्तू, अफलातून, अनुदारतावाद, अराजकतावाद, अन्य-अन्यीकरण, उदारतावाद, उपयोगितावाद, एडमण्ड बर्क, क्रांति, ज्याँ-ज़ाक रूसो, जॉन लॉक, जेरेमी बेंथम, जॉन स्टुअर्ट मिल, जॉन रॉल्स, जोहान गॉटफ्रीड हर्डर, डेविड ह्यूम, थॉमस पेन, न्याय, न्याय : नारीवादी आलोचना, न्याय : रॉल्स का सिद्धांत, नागरिकता, नागरिकता : अन्य परिप्रेक्ष्य-1 और 2, नागर समाज, पनोप्टिकॉन, फ्रेड्रिख़ वॉन हायक, बुद्धिवाद, माइकेल जोसेफ़ ओकशॉट, माइकिल वाल्ज़र, मिशेल पॉल फ़ूको-1 और 2, यूटोपिया, राजनीतिक दर्शन के नारीवादी आयाम, रॉबर्ट नॉज़िक, राज्य-1 और 2, विल किमलिका, स्वतंत्रतावाद, सर्वसत्तावाद, सम्प्रभुता, समाजवाद, सरकार और सरकारियत-1 और 2.

संदर्भ

1. डी.डी. राफ़ाएल (1977), *हॉब्स,* एलेन ऐंड अनविन, लंदन.
2. क्वेंटिन स्किनर (2002), *विज़ंस ऑफ़ पॉलिटिक्स,* खण्ड 3, *हॉब्स ऐंड सिविल साइंस,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.
3. क्वेंटिन स्किनर (1996), *रीज़न ऐंड रेटरिक इन द फिलॉसफ़ी ऑफ़ हॉब्स,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.
4. नोएल मैलकम (2002), *ऑस्पेक्स्ट्स ऑफ़ हॉब्स,* ओयूपी, न्यूयॉर्क.

— अभय कुमार दुबे

थॉमस पेन

(Thomas Paine)

रैडिकल-उदारतावादी राजनीतिक चिंतक और प्रचारक थॉमस पेन (1737-1809) *द राइट्स ऑफ़ मैन* और *कॉमन सेंस* जैसी महान कृतियों के रचियता थे। वे एक लोकप्रिय लेखक थे और उनकी पुस्तकें लाखों की संख्या में बिका करती थीं। गहन या मौलिक राजनीतिक चिंतक न होने के बावजूद उन्होंने अपने पसंदीदा विचारकों के सूत्रों की उदारतापूर्वक व्याख्या करते हुए उन्हें स्थापित किया। पेन ने अमेरिका में

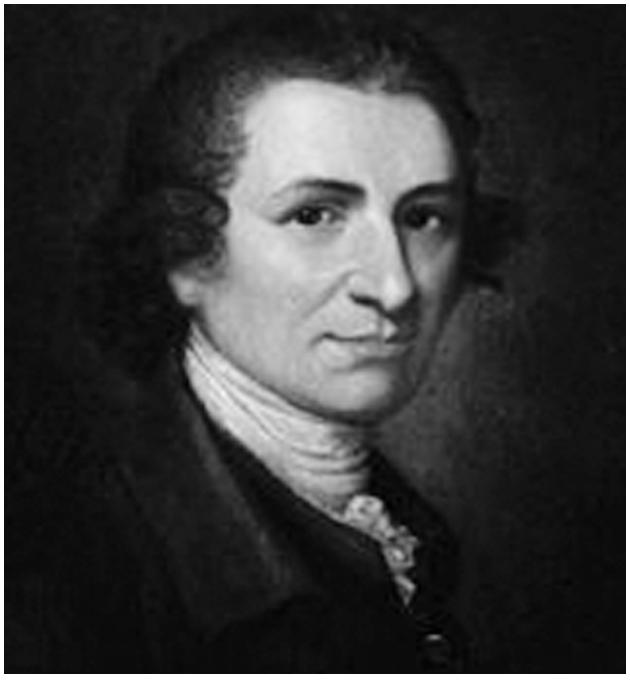

थॉमस पेन (1737–1809)

उस समय स्वतंत्रता की वकालत की जब ख़ुद अमेरिकनों के बीच यह विचार लोकप्रिय नहीं हुआ था। वे लोकोपकारी राज्य की अवधारणा का सूत्रीकरण करने वाले पहले चिंतकों में से एक थे। लॉक के विचारों का अनुसरण करते हुए उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों से सम्पन्न होता है और इन्हीं अधिकारों की सुरक्षा के लिए वह समाज में भागीदारी करता है। इसलिए सरकार को इन प्राकृतिक अधिकारों का उल्लंघन करने का कोई अधिकार नहीं है। सरकार का काम तो सिर्फ़ यह सुनिश्चित करना है कि लोग अपने जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति की सुरक्षा करने में समर्थ हो सकें। पेन का विचार था कि लोग समाज की रचना करने के लिए आपस में समझौता करते हैं और वे सामाजिक व्यवस्था क़ायम रखने के लिए सरकार को कुछ शक्तियाँ देते हैं। लेकिन प्रभुसत्ता हमेशा लोगों के पास ही रहनी चाहिए।

पेन का विचार था कि लोगों को सामूहिक रूप से यह फ़ैसला करने का अधिकार होना चाहिए कि वे जब चाहें शासन की की वर्तमान व्यवस्था हटा कर एक नयी व्यवस्था स्थापित कर सकें। पेन ने ऐडम स्मिथ की ही तरह इस बात पर भी ज़ोर दिया कि लोगों की आवश्यकताएँ उनमें टकराव उत्पन्न नहीं करती हैं, बल्कि उनकी आवश्यकताएँ स्वाभाविक रूप से उन्हें एक समाज के दायरे में ला कर उन्हें एक-दूसरे पर निर्भर बनाती हैं। वाणिज्य और 'अदृश्य हाथ' लोगों के हितों में सामंजस्य क़ायम करने का काम करते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि समाज व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि प्रकृति ने व्यक्ति में सामाजिक जुड़ाव की ऐसी भावना भर दी है कि लोग सिर्फ़ समाज में ही ख़ुशी पा सकते हैं। दरअसल, पेन ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि समाज व्यक्ति के लिए इतना स्वाभाविक है कि उसके लिए सरकार की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं है।

थॉमस पेन का जन्म ब्रिटेन में एक साधारण क्वेकर परिवार में हुआ था। उन्होंने कई तरह के पेशों में अपना हाथ आज़माया। उन्होंने नाविक, आबकारी विभाग के कर्मचारी के रूप में और दूकानदार के रूप में काम किया। एक आम उपदेशक और वाद-विवाद करने वाले व्यक्ति के रूप में उन्होंने बहुत सी दक्षताएँ विकसित कीं। उन्होंने पैंतीस साल की उम्र में अपना पहली पुस्तिका लिखी। यह आबकारी विभाग के कर्मचारियों का वेतन बढ़ाने से संबंधित थी। उन्होंने लंदन में इन कर्मचारियों के पक्ष में ये याचिकाएँ दायर करने में कई महीने बिताये। इस कारण उनका अपनी पत्नी से वैवाहिक संबंध टूट गया। उनकी नौकरी और दूकान भी उनके हाथ से चली गयी। 1775 में वे अमेरिका गये जहाँ उन्हें *पेंसिलवेनिया जर्नल* में नौकरी मिली। 1776 में उन्होंने *कॉमन सेंस* शीर्षक से एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें उन्होंने उस समय अमेरिका की स्वतंत्रता की तरफ़दारी की जब बहुत कम अमेरिकी लोग खुल कर यह नीति को अपनाने के लिए तैयार थे। यह पुस्तिका बहुत सफल रही और इसके प्रकाशन वर्ष में ही इसके पच्चीस संस्करण छपे। बाद में, पेन पेनसिल्वेनिया के लिए उदारतावादी राज्य संविधान बनाने की प्रक्रिया में भी शामिल हुए। इस संविधान में सार्वभौम मताधिकार, वार्षिक चुनाव, लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व, एक-सदनीय विधायिका और पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता को शामिल किया गया था। इसके अलावा उन्होंने जॉर्ज वाशिंगटन की रेवोल्यूशनरी आर्मी में भी काम किया।

1787 में पेन ने युरोप की यात्रा की। दरअसल, वे फ्रांस और इंग्लैण्ड, दोनों ही देशों की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते थे। जब एडमण्ड बर्क ने अपनी रचना *रिफ़्लेक्शंस इन द रेवोल्यूशन इन फ्रांस* में फ्रांस की क्रांति की आलोचना की, तो पेन फ्रांस के अपने रैडिकल दोस्तों की तरफ़दारी करते नज़र आये। पेन ने अपने द *राइट्स ऑफ़ मैन* (1791 और 1792) लिख कर वंशानुगत और राजतंत्रीय व्यवस्थाओं पर हमला किया। उन्होंने लोकप्रिय प्रभुसत्ता और व्यक्तिगत अधिकारों पर ज़ोर देते हुए बर्क के तर्कों की तीखी आलोचना की। इसीलिए जहाँ एक ओर ब्रिटिश सरकार ने पेन पर राजद्रोही विचार फैलाने के लिए मुक़दमा चलाया, वहीं फ्रांस में उन्हें नैशनल एसेम्बली का सदस्य चुना गया। पेन ने गणतंत्रवाद का ज़ोरदार समर्थन किया, लेकिन उन्होंने राजा को फाँसी दिये जाने की जैकोबिंस की माँग का विरोध भी किया। बाद में उन्हें भी गिरफ़्तार कर लिया गया और वे फाँसी

की सजा पाने से बाल-बाल बचे।

फ्रांस में अपने प्रवास के दौरान पेन ने अपनी प्रसिद्ध किताब द *ऐज ऑफ़ रीजन* (1784) का प्रकाशन करके धर्म की संस्था पर हमला किया। इसके कारण उन्हें सार्वजनिक रूप से निंदा का सामना करना पड़ा। अट्ठारहवीं सदी में व्यक्ति उनके इन विचारों को बीसवीं सदी में मान्यता मिलनी शुरू हुई। फ्रांस प्रवास के दौरान ही उन्होंने अपनी रैडिकल पुस्तिका *एग्रेरियन जस्टिस* (1796) की रचना की। आख़िरकार 1802 में पेन अमेरिका लौट गये जहाँ फ़ेडरलिस्ट प्रेस द्वारा अपनी झूठी निंदा का उन्हें सामना करना पड़ा। 1809 में अपनी मृत्यु तक वे सार्वजनिक जीवन में बिल्कुल अलग-थलग पड़ गये थे।

अट्ठारहवीं सदी के युरोप में क़ायम राजतंत्रीय और कुलीनतंत्रीय व्यवस्थाओं के पेन ज़बरदस्त आलोचक थे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि वंशानुगत शासन धोखाधड़ी से किया जाने वाला शासन है। यह लोगों की अज्ञानता और अंध-विश्वासों पर आधारित होता है : उनका कहना था कि 'वंशानुगत विधिकर्त्ता का विचार उतना ही बेतुका है ... जितना कि वंशानुगत गणितज्ञ या वंशानुगत बुद्धिमान व्यक्ति का विचार।' पेन का दावा था कि यह सिद्धांत अतार्किक है और इस तरह की सरकार के शासन में युद्ध और भ्रष्टाचार आदि का बोलबाला होता है। सिर्फ़ प्रतिनिधिमूलक लोकतांत्रिक व्यवस्था की सरकार ही इस तरह की बुराइयों से मुक्त होती है। यह व्यवस्था एक संविधान पर आधारित होती है जिसमें सभी लोगों की परम्पराओं को शामिल किया जाता है और वे लोग ही इस संविधान का अनुमोदन करते हैं। पेन ने अपने अमेरिकी अनुभवों के आधार पर इस तरह की सरकार की वकालत की। अपने बाद के लेखन में उन्होंने इंग्लैण्ड और फ्रांस के लोगों से यह अपील की कि वे अपने यहाँ की भ्रष्ट वंशानुगत व्यवस्थाओं को ख़त्म करें और इसकी जगह अमेरिका की भाँति गणतंत्रवादी सरकार की स्थापना करें। पेन मानते थे कि इस तरह की सरकार उनके अधिकारों की हिफ़ाज़त करेगी। यह सरकार जवाबदेह होगी और शांति तथा व्यवस्था क़ायम रखेगी। इस तरह की सरकार को अपने हर कदम व्याख्या लोगों के सामने करनी होगी। इसी कारण इसमें सबसे अच्छे और सबसे बुद्धिमान लोगों के चुने जाने की सम्भावना होगी।

द *राइट्स ऑफ़ मैन* के दूसरे भाग और *एग्रेरियन जस्टिस* को पेन का सबसे मौलिक लेखन माना जा सकता है। इन दोनों में ही वे न्यूनतम राज्य के स्वतंत्रतावादी विचार से आगे जाते हैं और एक कल्याणकारी राज्य की रूपरेखा और उसका औचित्य पेश करते हैं। द *राइट्स ऑफ़ मैन* के दूसरे भाग में वे ब्रिटेन में ग़रीबों को राहत देने, ग़रीबों की शिक्षा के लिए राज्य द्वारा वित्तीय सहायता देने, वृद्धावस्था पेंशन, मृत्यु और मातृत्व की स्थिति में मदद करने और ग़रीब लोगों के लिए आवास मुहैया कराने के बारे में एक राष्ट्रीय व्यवस्था बनाने का प्रस्ताव पेश करते हैं। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि राजतंत्रीय सरकार को हटा कर गणतंत्रवादी सरकार स्थापित करने से पैसे की जो बचत होगी उसी से इस तरह की व्यवस्था स्थापित हो सकती है। इस व्यवस्था से ग़रीबों का बोझ कम होगा और अमीरों को इस बात के लिए प्रोत्साहन मिलेगा कि वे अपने बच्चों में अपनी सम्पत्ति का ज्यादा समान तरीक़े बँटवारा करें, जिससे ज्येष्ठाधिकार की अप्राकृतिक व्यवस्था ख़त्म हो सके।

एग्रेरियन जस्टिस में पेन ने पुनर्वितरण टैक्स लगाने और कल्याणकारी राज्य की सैद्धांतिक तरफ़दारी पेश की है। वे यह तर्क देते हैं कि हर व्यक्ति का जन्म इस प्राकृतिक अधिकार के साथ होता है कि वह धरती और इसके उत्पादों का प्रयोग करे। निश्चित रूप से अपने प्रयास से उत्पन्न की गयी वस्तुओं पर लोगों का अधिकार होता है; लेकिन वे अपने इस अधिकार का विस्तार उस ज़मीन पर नहीं कर सकते हैं, जिस पर वे काम करते हैं। यह ज़मीन सामान्य सम्पत्ति ही रहती है। इसके अलावा, व्यक्ति अपनी अधिकांश व्यक्तिगत सम्पत्ति अपने हाथों से नहीं कमाता, बल्कि समाज के माध्यम से अर्जित करता है। इसलिए हमें समाज को एक बुनियादी लागत और अपने संग्रहण का एक भाग देना चाहिए क्योंकि 'सारी चीज़ें वहीं से आती हैं'। पेन यह प्रस्तावित करते हैं कि मृत्यु-कर के रूप में एक सम्पत्ति कर लगाया जाना चाहिए। इसका उपयोग इक्कीस साल से ज्यादा उम्र के हर व्यक्ति को एकमुश्त राशि देने और पचास साल से ज्यादा उम्र के व्यक्तियों या अंधे और असहाय लोगों को एक सालाना पेमेंट लेने के लिए किया जाना चाहिए। इस तरह की व्यवस्था से किसी भी व्यक्ति को शुरुआत से ही नुक़सान का सामना नहीं करना पड़ेगा और जो लोग किसी कारण से वंचित स्थिति में हैं, उन्हें मदद मिलेगी।

देखें : अधिकार, अधिकार : सैद्धांतिक यात्रा, अरस्तू, अफलातून, अनुदारतावाद, अराजकतावाद, अन्य-अन्यीकरण, उदारतावाद, उपयोगितावाद, एडमण्ड बर्क, क्रांति, ज्याँ-ज़ाक रूसो, जॉन लॉक, जेरेमी बेंथम, जॉन स्टुअर्ट मिल, जॉन रॉल्स, थॉमस हॉब्स, न्याय, न्याय : नारीवादी आलोचना, न्याय : रॉल्स का सिद्धांत, नागरिकता, नागरिकता : अन्य परिप्रेक्ष्य-1 और 2, नागर समाज, पनोप्टिकॉन, फ्रेड्रिख़ वॉन हायक, बुद्धिवाद, माइकेल जोसेफ़ ओकशॉट, माइकिल वाल्ज़र, मिशेल पॉल फ़ूको-1 और 2, यूटोपिया, राजनीतिक दर्शन के नारीवादी आयाम, रॉबर्ट नॉज़िक, राज्य-1 और 2, विल किमलिका, स्वतंत्रतावाद, सर्वसत्तावाद, सम्प्रभुता, समाजवाद, सरकारियत।

संदर्भ

1. ए. विलियम्सन (1973), थॉमस पेन : हिज़ लाइफ़, वर्क ऐंड

टाइम, एलन ऐंड अनविन, लंदन.
2. थॉमस पेन (1948), द *लाइफ़ ऐंड मेजर राइटिंग्स ऑफ़ थॉमस पेन,* सम्पा. पी.एस. फ़ोनर, दो खण्ड, सिटेडल, सीकॉक्स, एनज.
3. इ. फ़ोनर (1976), टॉम पेन ऐंड रेवोल्यूशनरी अमेरिका. ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

— कमल नयन चौबे

थॉमस मन और वणिकवाद

(Thomas Mun and Mercantilism)

वणिकवाद आधुनिक अर्थशास्त्र की एक शुरुआती विचारधारा रही है। थॉमस मन (1571–1641) उसके सर्वाधिक प्रतिभाशाली और विख्यात पैरोकार थे। वणिकवाद उस ज़माने का विचार है जब मानवीय श्रम को हर तरह की समृद्धि का स्रोत समझने के विचार का सूत्रीकरण नहीं हुआ था। वणिकवाद का आग्रह था कि राष्ट्रों की समृद्धि वाणिज्य से होने वाली आमदनी पर निर्भर होती है, इसलिए हर देश को विदेश व्यापार के ज़रिये अपनी सम्पत्ति और ख़ज़ाने में बढ़ोतरी करनी चाहिए। उसे चाहिए कि क़ीमतों की दृष्टि से वह दूसरों को अपनी चीज़ें ज़्यादा बेचे और उनकी चीज़ों का कम उपभोग करे। समझा जाता था कि ज़्यादा निर्यात और कम आयात के ज़रिये धनात्मक व्यापार-अधिशेष की स्थिति प्राप्त करना ही किसी देश की अमीरी का मुख्य कारण हो सकता है। थॉमस मन का कहना था कि जिस कारण से परिवारों की सम्पत्ति में वृद्धि होती है या उसका क्षय होता है, वही कारण राष्ट्रों की समृद्धि या दरिद्रता के होते हैं : अर्थात् किफ़ायत से रहो, कम ख़र्च करो और ज़्यादा कमाओ। मन के वणिकवादी सुझावों का मुख्य आधार इंग्लैण्ड और ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा किये जाने वाला व्यापार था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी सुदूर-पूर्व में तिजारत करने वाली एक सनद-प्राप्त ज्वायंट स्टॉक फ़र्म थी जिसकी भारतीय गतिविधियों का मन ने ख़ास तौर से अध्ययन किया था। अन्य वणिकवादी अर्थशास्त्रियों की तरह मन स्वयं व्यापारी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक पदाधिकारी भी थे। वणिकवादी विचारों को अट्ठारहवीं सदी में पहले प्रकृतिवादियों द्वारा और फिर ऐडम स्मिथ और डेविड ह्यूम द्वारा कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा। बीसवीं सदी में वणिकवाद को एक बार फिर सकारात्मक निगाह से देखा गया जब जॉन मेनार्ड कींस ने व्यापार-अधिशेष के ज़रिये माँग बढ़ने के सिलसिले में उसकी प्रशंसा की। जापानी अर्थव्यवस्था द्वारा व्यापार-अधिशेष के ज़रिये लाभ उठाने के संबंध में भी वणिकवादी प्रस्थापनाओं की प्रासंगिकता का ज़िक्र किया जाता है। यह अलग बात है कि सभी राष्ट्र एक ही समय में धनात्मक व्यापार-अधिशेष हासिल नहीं कर सकते।

थॉमस मन के निजी जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। उनके दादा शाही टकसाल में काम करते थे और उनके पिता कपड़ा व्यापारी थे। बचपन में पिता का देहांत हो जाने के कारण मन का लालन-पालन सौतेले पिता की देखरेख में हुआ। सौतेले पिता की दुकान और दफ़्तर में प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद मन ने अपना कॅरियर तिजारत से शुरू किया, कई साल तक इटली में रहे, तुर्की और भूमध्यसागरीय देशों की यात्राएँ कीं और काफ़ी तेज़ी से मालदार होते चले गये। बाद में मन का संबंध ईस्ट इण्डिया कम्पनी से हुआ। 1615 में वे इस कम्पनी के निदेशक चुने गये और फिर बाक़ी जीवन इसी पद पर रहे। अमीरी और हैसियत हासिल कर लेने के बाद मन की कई ब्रिटिश कमेटियों और आयोगों में नियुक्ति हुई। वे वेस्टमिंस्टर और लंदन शहर के अत्यंत सम्माननीय व्यक्ति बन गये। उस ज़माने के कई आयोगों द्वारा जारी की गयी रपटों में कमेटी के सदस्य के रूप में मन का नाम दर्ज मिलता है। अर्थशास्त्र के इतिहास में मन की मुख्यत: दो रचनाएँ चर्चित हैं : *अ डिस्क्रोर्स ऑफ़ ट्रेड अनटू द ईस्ट-इंडीज़* (1621) जिसमें उनका मक़सद ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर लगने वाले आरोपों का खण्डन करते हुए वणिकवाद की पैरोकारी करना है। दूसरी रचना *इंग्लैंड्स ट्रैज़र बाइ फ़ॉरैन ट्रेड* (1664) उनके देहांत के बाद प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बजाय समग्र राष्ट्र को अपने विचार के दायरे में लिया है।

अर्थशास्त्री के रूप में मन की भूमिका तब उभरी जब सत्रहवीं सदी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत के साथ व्यापार को इंग्लैण्ड में कई तरह के आरोपों का सामना करना पड़ा। सोने और चाँदी के बदले भारत से मसाले ख़रीदने के कारण यह समझा जा रहा है कि इंग्लैण्ड का आर्थिक नुक़सान हो रहा है। मन ने कम्पनी के पक्ष में तर्क दिया कि वह वस्त्र, खाद्य और युद्ध-सामग्री का आयात कर रही है जिससे इंग्लैण्ड में लोगों की बेहतरी हो रही है। मन ने कम्पनी की तारीफ़ की कि वह विलासितापूर्ण वस्तुएँ आयात करने के बजाय केवल ज़रूरत की चीज़ें ही मँगा रही है। दूसरे, भारत के साथ व्यापार करने के ज़रिये कम्पनी इंग्लैण्ड का माल बेचने के लिए बाज़ार भी तैयार कर रही है। मन ने दिखाया कि अगर इन्हीं चीज़ों की तिजारत तुर्की से की जाए तो इंग्लैण्ड को ज़्यादा धन ख़र्च करना पड़ सकता है। अंत में मन ने दलील दी कि ऐसी विलासितापूर्ण चीज़ों का आयात भी किया जा सकता है जिनके पुन: निर्यात से मुनाफ़ा कमाया जा सके।

एक आर्थिक चिंतक के रूप में मन की ख्याति उनकी दूसरी रचना पर टिकी है। इसमें मन ने उन कारणों और

परिस्थितियों की जाँच की है जिनके कारण किसी देश को व्यापार-अधिशेष प्राप्त हो सकता है। मन का पहला फ़ार्मूला यह था कि व्यापार से होने वाली अतिरिक्त आमदनी का मतलब यह नहीं होना चाहिए कि इंग्लैण्ड के लोग घरेलू बाज़ार से अपने लिए ज़्यादा चीज़ें ख़रीदना शुरू कर दें। बजाय इसके इस अधिशेष का निवेश के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि निर्यात के लिए अधिक से अधिक माल का उत्पादन हो सके। इस प्रकार मन व्यापार-अधिशेष के रूप में उत्पादक पूँजी के संचय की धारणा ले कर सामने आये। मन ने निर्यात किये जाने वाले माल के लिए मूल्य नीति बनाने का सुझाव भी दिया। इसका मतलब था कि अगर किसी माल के बाज़ार पर इंग्लैण्ड की इजारेदारी या तक़रीबन इजारेदारी है तो उसे ऊँची से ऊँची कीमत पर बेचा जाना चाहिए। लेकिन, अगर विदेश व्यापार में उसे प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है तो वह नीचे से नीचे दामों पर बेच सकता है। इस रवैये से विदेशी प्रतियोगियों को पछाड़ा जा सकेगा। मन का कहना था कि एक बार जीत हासिल करने पर दाम बढ़ाये जा सकते हैं, पर इतने नहीं कि उसके कारण प्रतियोगियों को एक बार फिर बाज़ार में कूद पड़ने का प्रलोभन दिखने लगे।

थॉमस मन (1571-1641)

मन ने यह सिफ़ारिश भी की कि ब्रिटेन द्वारा बनाये गये माल की गुणवत्ता बहुत ऊँची होनी चाहिए ताकि दुनिया के पैमाने पर उसकी माँग बनी रहे और निर्यात लगातार बढ़ता रहे। उन्हें आयात घटाना समृद्धिकारक लगता था। इसके लिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार को कारख़ानेदारों को विनियमित करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि सरकार को एक व्यापार परिषद् बनानी चाहिए (यही काम अमेरिका में वाणिज्य विभाग करता है) जो सरकार को वाणिज्य और औद्योगिक गतिविधियाँ विनियमित करने के लिए सुझाव देगी। मन गुणवत्ता के मामले में कारख़ानेदारों पर बहुत कड़ी पाबंदियाँ लगाने के पक्ष में थे।

मन ने व्यापार-अधिशेष बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय कर नीति का इस्तेमाल करने का भी सुझाव दिया। अगर राष्ट्रीय हितों के विपरीत कोई फ़र्म विलासितापूर्ण चीज़ें आयात करना चाहती है तो करारोपण के ज़रिये निजी और राष्ट्रीय हितों को समरस किया जाना चाहिए। मन ने निर्यात शुल्क कम से कम रखने का सुझाव दिया ताकि ब्रिटिश माल विदेशों में महँगा न बेचना पड़े। उन्होंने कहा कि आयात शुल्क भी कम रखा जाए ताकि आयातित माल का फिर से निर्यात ऊँचे दामों पर न करना पड़े। मन की निगाह में उत्पाद शुक्ल और बिक्री कर हानि रहित था।

अट्ठारहवीं और नौवीं सदी में मन के विचारों और वणिकवाद को ज़बरदस्त आलोचना का सामना करना पड़ा। डेविड ह्यूम ने दिखाया कि किस तरह व्यापार-अधिशेष में अपने-आप संशोधन हो जाता है। प्रकृतिवादी विद्वान फ़्रांस्वा केस्ने और ऐडम स्मिथ ने तर्क दिया कि वणिकवादी सरकार द्वारा लगायी गयी पाबंदियों का नुक़सान समझ पाने में मन असमर्थ रहे हैं। सरकार काम-धंधे में जितना कम हस्तक्षेप करेगी, घरेलू उत्पादन उतनी ही तेज़ी से बढ़ेगा। डेविड रिकार्डो ने मुक्त व्यापार के पक्ष में मज़बूत तर्क पेश किये। इन आलोचनाओं के कारण आर्थिक चिंतन पर से वणिकवाद के प्रभाव का तेज़ी से क्षय हुआ। लेकिन, बीसवीं सदी मे कींस ने अपनी 1936 में प्रकाशित रचना *जनरल थियरी ऑफ़ एम्पलायमेंट, इंटरेस्ट ऐंड मनी* के 23वें अध्याय 'नोट्स ऑन मर्केंटलिज़म' में कहा कि व्यापार-अधिशेष की मदद से रोज़गार और माँग में बढ़ोतरी की जा सकती है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापानी अर्थव्यवस्था ने भी वणिकवादी फ़ार्मूलों का इस्तेमाल करके विश्व व्यापार में अपनी हैसियत बनायी। जापान ने अपने कारख़ानों में माल बनाया और दुनिया के बाज़ार में बेचा। आयात-निर्यात के इस विनिमय में जापान कई क्षेत्रों में अपनी तक़रीबन इजारेदारी क़ायम की और अपना अधिशेष बढ़ाने में कामयाबी हासिल की। आज आर्थिक हलकों में भले ही मन के सिद्धांतों की चर्चा न हो, पर इस हक़ीक़त से इनकार नहीं किया जा सकता कि निर्यातोन्मुख विकास की लोकप्रिय थीसिस की जड़ें उन्हीं के चिंतन में निहित हैं। निर्यात बढ़ा कर विदेश व्यापार के ज़रिये अधिशेष जमा करने के सूत्र को आर्थिक वृद्धि का केंद्रीय पहलू बनाना मन की ही सूझ-बूझ का परिणाम था।

देखें : फ़्रांस्वा केस्ने और प्रकृतिवाद, डेविड ह्यूम, ऐडम स्मिथ, जॉन मेनार्ड कींस।

संदर्भ

1. ए.वी. एनीकिन (1983), *आर्थिक विज्ञान का युवा काल : मार्क्स-पूर्व का अर्थशास्त्र,* अनुवाद : गिरीश मिश्र, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
2. फ़िलिप डब्ल्यू. बक (1964), *द पॉलिटिक्स ऑफ़ मर्केंटलिज़म,* ऑक्टागन बुक्स, न्यूयॉर्क.
3. लार्स मैगनुसन (1994), *मर्केंटलिज़म : द शेपिंग ऑफ़ ऐन इकॉनॉमिक लेंग्वेज,* रॉटलेज, न्यूयॉर्क और लंदन.
4. चैल्मर्स जॉनसन (1982), *एमआईटीआई ऐंड द जापानीज़*

मिरैकिल : द ग्रोथ ऑफ़ इंडस्ट्रियल पॉलिसी, स्टैनफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस.
5. ई.ए.जे. जॉनसन (1965), *प्रेडेसर्स ऑफ़ ऐडम स्मिथ : द ग्रोथ ऑफ़ ब्रिटिश इकॉनॉमिक थॉट,* ऑगस्ट एम. केली, न्यूयॉर्क.

—अभय कुमार दुबे

थॉमस रॉबर्ट माल्थस

(Thomas Robert Malthus)

जनसंख्या संबंधी सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए मशहूर थॉमस रॉबर्ट माल्थस (1766-1834) अपने समकालीन अर्थशास्त्रियों के बीच सर्वाधिक विवादास्पद हस्ती थे। उन्होंने हमेशा अपने समय की प्रचलित धारणाओं से अलग हट कर चिंतन किया। एक अर्थशास्त्री के रूप में माल्थस को कई सैद्धांतिक योगदानों का श्रेय है। उन्हें कींसियन अर्थशास्त्र के पुरोगामी की संज्ञा भी दी जाती है। वे अर्थशास्त्र को निगमनात्मक के बजाय आनुभविक विज्ञान बनाने के पक्ष में थे। उनकी मान्यता थी कि अर्थव्यवस्थाएँ हमेशा ही ऊँची बेरोज़गारी के लम्बे दौरों में फँसने के अंदेशों की शिकार रहती हैं। नीतिगत लिहाज़ से वे मुक्त व्यापार के विरोधी होने के साथ-साथ सरकार द्वारा ग़रीबों की कोई भी मदद करने के तरफ़दार भी नहीं थे। दरअसल, अपने जनसंख्या संबंधी अध्ययनों के ज़रिये वे इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि समाज में आम लोगों को आर्थिक रूप ख़ुशहाल बनाना या उनके जीवन-स्तर को उठाना नामुमकिन है। अगर लोगों का जीवन-स्तर बेहतर बनाया जाएगा तो परिणामस्वरूप वे और बच्चे पैदा करेंगे, जनसंख्या और बढ़ जाएगी जिसका आर्थिक वृद्धि पर विपरीत असर पड़ेगा। माल्थस का दृढ़ मत था कि नीतियाँ कोई भी हों और उनके पीछे कितना भी नेक इरादा क्यों न हो, उनका परिणाम लोगों के हालात ख़राब होने में ही निकलेगा। माल्थस का सिद्धांत स्पष्ट संदेश देता है कि समाज व्यवस्था कैसी भी हो, जनसंख्या वृद्धि की समस्या के कारण मानवता एक बंद गली में फँस चुकी है। न किसी क्रांति से काम चलेगा, और न ही किसी सुधार से। वे आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि के मामले में निराशाजनक दृष्टिकोण रखते थे।

माल्थस का जन्म सरे (इंग्लैण्ड) के एक ख़ुशहाल परिवार में हुआ था। बचपन में उन्हें घरेलू ट्यूशन और बेहतरीन प्राइवेट स्कूलों के ज़रिये अच्छी शिक्षा मिली। 18 वर्ष की आयु में उन्होंने केम्ब्रिज के जीसस कॉलेज में गणित और प्राकृतिक दर्शन का अध्ययन किया। माल्थस के पिता एक उत्साही और आशावादी व्यक्ति थे। पर, माल्थस की प्रवृत्तियाँ उनके विपरीत थीं। उनकी अपने पिता के साथ अक्सर दार्शनिक और सामाजिक विषयों पर तल्ख़ बहस होती रहती थी। अपने पिता की इच्छा के विपरीत माल्थस ने पादरी बनने का निर्णय लिया और 1788 में रिवरेंड माल्थस बन गये। जनसंख्या संबंधी सिद्धांत के प्रवर्तन के बाद वे लंदन के पास स्थित न्यू ईस्ट इण्डिया कॉलेज़ में इतिहास, राजनीति, वाणिज्य और वित्त के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। अध्यापन से मिलने वाले काफ़ी समय का इस्तेमाल माल्थस ने अपने बुद्धिजीवी दोस्तों से मेल-मुलाक़ात में बिताया जिनमें डेविड रिकार्डो भी शामिल थे।

अट्ठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में कई अर्थशास्त्रियों और विचारकों, ख़ास कर समाजवादी रुझान वाले चिंतकों, का विचार था कि औद्योगिक क्रांति के दौरान दरिद्रता और बदहाली के शिकार मज़दूरों और अन्य ग़रीब जनता को विभिन्न सुधार कार्यक्रम चला कर ग़रीबी के गर्त से निकाला जा सकता है। माल्थस के पिता भी इसी तर्ज़ पर सोचते थे, इसलिए एक दिन उनकी अपने बेटे के साथ इस मुद्दे पर गरमा-गर्म बहस हो गयी। इस विवाद ने माल्थस को संबंधित अध्ययन के लिए प्रेरित किया जिसका नतीजा 1798 में प्रकाशित उनकी रचना *एसे ऑन पॉपुलेशन* के रूप में सामने आया। इसकी वजह से माल्थस को ज़बरदस्त ख्याति और मान्यता मिली। जिस ज़माने में माल्थस अपने जनसंख्या सिद्धांत के ज़रिये लोगों के हालात में सुधार को नामुमकिन क़रार देने में लगे हुए थे, मार्क्विस द कोंदोर्स, रॉबर्ट ओवेन और विलियम गॉडविन जैसे विचारक मज़दूरों के लिए अधिक समानता और सुरक्षा की वकालत कर रहे थे। कोंदोर्स एक ऐसे सरकारी क़ानूनों के पक्ष में थे जिनसे ज़रूरतमंद परिवारों को निचली ब्याज दरों पर कर्ज़ मिल सके। ओवेन औद्योगिक शहरों में मज़दूरों के यूटोपियन समुदाय गठित करने की सलाह दे रहे थे ताकि उनके सामाजिक हालात बेहतर किये जा सकें। गॉडविन का तो और भी ज़ोरदार तरीके से प्रस्ताव यह था कि पूँजीपतियों की सम्पत्ति ज़ब्त करके दरिद्रों में वितरित की जानी चाहिए। माल्थस ने इसी तरह के विचारों के ख़िलाफ़ प्रतिक्रिया करते हुए अपना सिद्धांत दिया।

उनका मुख्य तर्क इस प्रकार था : स्त्री और पुरुष भोजन और सम्भोग के बिना नहीं रह सकते। अपनी इन्हीं कामनाओं को पूरा करने के लिए वे बच्चे भी पैदा करते हैं और खाद्य भी। लेकिन समस्या यह है कि आबादी में वृद्धि ज्यामितीय गति से (जैसे 1, 2, 4, 8, 16) होती है, जबकि खाद्य उत्पादन केवल अंकगणितीय रफ़्तार (जैसे 1, 2, 3, 4, 5) से बढ़ता है। खेती में पैदावार पहले के मुक़ाबले लगातार घटती रहती है। खेती के लिए ज़मीन का क्षेत्रफल बढ़ाने से

यह क्रम नहीं बदलता। नये भू-खण्ड पुराने भू-खण्डों के मुक़ाबले कम पैदावार देते हैं। चूँकि आबादी खाद्य की अपेक्षा तेज़ रफ़्तार से बढ़ेगी इसलिए एक समय ऐसा आयेगा जब उसका पेट भरने के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध नहीं हो पायेगा। अगर आबादी की वृद्धि पर कोई और रोक नहीं लगायी गयी तो भुखमरी फैलेगी। *एसे ऑन पॉपुलेशन* के पहले संस्करण में माल्थस ने आबादी की वृद्धि रोकने के 'सकारात्मक कारणों' का ज़िक्र किया। यानी इस समय तक उनकी दिलचस्पी केवल मृत्यु दर बढ़ाने वाले कारकों में थी। उनका विचार था कि अकाल, कुदरती आफ़तों, प्लेग और युद्ध जैसे कारक आबादी को अपने आप कम करते रहते हैं। लेकिन, अपनी इसी रचना के अगले संस्करण में उन्होंने जन्म दर घटाने संबंधी उपायों पर ध्यान दिया जिनमें यौन संयम, जन्म नियंत्रण और देर से विवाह करने के सुझाव शामिल थे। इन सुझावों ने माल्थस की आर्थिक भविष्यवाणी के निराशाजनक पहलुओं को कुछ नर्म किया।

समाजवादी रुझानों से निकली दलीलों और सुझावों के ख़िलाफ़ माल्थस ने कहा कि अगर आमदनी का वितरण अधिक समतामूलक कर दिया गया और अगर सामाजिक सुधारों के ज़रिये मज़दूर वर्ग की हालत सुधार दी गयी तो मज़दूर और ज़्यादा बच्चे पैदा करना शुरू कर देंगे। नतीजतन उनकी ग़रीबी वैसी की वैसी ही बनी रहेगी। इसी तर्क के आधार पर माल्थस ने ग़रीबों को राहत देने के लिए क़ानून बनाने का विरोध किया। वे ग़रीबों को किसी भी तरह का अनुदान देने के विरोधी थे। कई साल बाद माल्थस ने *एन इनवेस्टीगेशन ऑफ़ द कॉज़ ऑफ़ द प्रज़ेंट हाई प्राइस ऑफ़ प्रॉवीज़न* शीर्षक से लेख लिख कर दावा किया कि ग़रीबों को दी जाने वाली राहत के कारण ही इंग्लैण्ड में मक्का के दाम बढ़ गये हैं। परिणामस्वरूप न केवल ग़रीबों की दिक़्क़तें बढ़ी हैं, बल्कि सभी ब्रिटिश नागरिक परेशानी में फँस गये हैं।

हालाँकि माल्थस की ख्याति (या बदनामी?) मुख्यतः उनके जनसंख्या सिद्धांत के कारण है, पर उन्होंने क्लासिकल अर्थशास्त्र में कुछ सैद्धांतिक योगदान भी किये हैं। मसलन, उन्होंने मुनाफ़े का सिद्धांत विकसित करके उस कमी को भरा है जिस पर ऐडम स्मिथ ने ध्यान नहीं दिया था। माल्थस का एक अन्य योगदान खेतिहर ज़मीन से होने वाली लगान की आमदनी से संबंधित भी है। कुल मिला कर उनका तर्क था कि पूँजीपति कारख़ाने में मशीनें और प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराने के ज़रिये मज़दूरों की उत्पादकता बढ़ाता है जिसका बदला उसे मुनाफ़े के रूप में मिलना चाहिए। इसी तरह भू-स्वामी खेती योग्य ज़मीन की उत्पादकता में बढ़ोतरी करते हैं जिसका पुरस्कार उन्हें लगान के रूप में मिलना ज़रूरी है।

नीतिगत रूप से माल्थस ने चेतावनी दी कि अर्थव्यवस्था बीच-बीच में मंदी या आधिक्य की शिकार होती

थॉमस रॉबर्ट माल्थस (1766-1834)

रहेगी। कींस ने माना है कि माल्थस का यह प्रेक्षण व्यापार चक्रों के उनके सिद्धांत का पुरोगामी है।

अपनी जनसंख्या संबंधी प्रस्थापनाओं और निराशाजनक भविष्यवाणियों के लिए माल्थस को ज़बरदस्त आलोचना का सामना करना पड़ा। थॉमस कार्लाइल ने माल्थस जैसी भविष्यवाणियों के कारण ही अर्थशास्त्र को 'एक मनहूस विज्ञान' क़रार दिया। कार्लाइल की यह टिप्पणी आज तक अर्थशास्त्र के अनुशासन के साथ किसी न किसी रूप में चिपकी हुई है। मार्क्स ने भी मज़दूर वर्ग विरोधी विचारों और निराशाजनक रवैये के कारण उन्हें 'राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्षमायाचक' की संज्ञा दी। ईसाई भी माल्थस के काफ़ी नाराज़ हुए। उनका तर्क था कि अगर भुखमरी की नौबत आयेगी तो ईश्वर अपने आप बच्चों की पैदाइश रोक देगा। कुछ विद्वानों ने यह तर्क भी दिया कि तकनीकी प्रगति जीवनयापन के साधनों को बहुत बढ़ा देगी। यह भी कहा गया कि जीवन-शैली में सुधार के लोभ के कारण होने वाले माता-पिता ख़ुद ही कम बच्चे पैदा करना पसंद करेंगे। कालांतर में माल्थस के अनुयायियों द्वारा जन्मदर घटाने संबंधी उपायों पर ज़ोर दिया जाने लगा।

देखें : अर्थ-विज्ञान का समाजशास्त्र, आर्थिक जनसांख्यिकी, अल्फ्रेड मार्शल, अमर्त्य कुमार सेन, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, आधार और अधिरचना, ऑस्कर रायज़ार्ड लांगे, ऐडम स्मिथ, क़रारोपण, कल्याणकारी अर्थशास्त्र, क्लासिकल अर्थशास्त्र, कार्ल हाइनरिख़ मार्क्स-3, कार्ल मेंगर, कींसियन अर्थशास्त्र, गुन्नार मिर्डाल, जोआन

रोबिंसन, जॉन कैनेथ गालब्रेथ, जॉन मेनार्ड कींस, जॉन स्टुअर्ट मिल, जोसेफ़ शुमपीटर, जैव विविधता, ट्रस्टीशिप, डेविड रिकार्डो, ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम, थॉमस मन और वणिकवाद, दक्षता, धन, नियोक्लासिकल अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र, निकोलस काल्दोर, नियोजन, नियोजन : मार्क्सवादी विमर्श, पण्य, पण्य-पूजा, पेटेंट, पॉल सेमुअलसन, पियरो स्राफ़ा, पूँजी, प्रतियोगिता, फ्रांस्वा केस्ने और प्रकृतिवाद, फ्रेड्रिख़ वॉन हायक, बहुराष्ट्रीय निगम, बाज़ार, बाज़ार की विफलताएँ, बाज़ार-समाजवाद, बौद्धिक सम्पदा अधिकार, ब्रेटन वुड्स प्रणाली, भारत में बहुराष्ट्रीय निगम, भारत में नियोजन, भारत में पेटेंट क़ानून, भारत में शेयर संस्कृति, भूमण्डलीकरण और पूँजी बाज़ार, भूमण्डलीकरण और वित्तीय पूँजी, भूमण्डलीकरण और वित्तीय उपकरण, मार्क्सवादी अर्थशास्त्र, मिल्टन फ्रीडमेन, मूल्य, राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति, रॉबर्ट ओवेन, विलफ्रेडो परेटो, विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक, विलियम पेटी, विलियम स्टेनली जेवंस, वैकासिक अर्थशास्त्र, शोषण, साइमन कुज़्नेत्स।

संदर्भ

1. ए.वी. एनीकिन (1983), *आर्थिक विज्ञान का युवा काल : मार्क्स-पूर्व का अर्थशास्त्र,* अनुवाद : गिरीश मिश्र, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
2. जे.आर. बोनर (1966), *माल्थस ऐंड हिज़ वर्क,* ऑगस्त एम. केली, न्यूयॉर्क.
3. विलियम डी. ग्रैम्प (1974), 'माल्थस ऐंड हिज़ कंटेम्परेरीज़', *हिस्ट्री ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनॉमी,* खण्ड 6, अंक 3.
4. जॉन मेनार्ड कींस (1951), 'माल्थस', *एसेज़ इन बायोग्राफ़ी,* नॉर्टन, न्यूयॉर्क.

—अभय कुमार दुबे

थॉमस हिल ग्रीन

(Thomas Hill Green)

ब्रिटिश भाववादी दार्शनिक और सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांतकार थॉमस हिल ग्रीन (1836-1882) ने उदारतावाद के शुरुआती संस्करण की सीमाएँ स्पष्ट करते हुए इस विचार को लोकोपकारी राज्य की सम्भावनाओं की तरफ़ मोड़ने की भूमिका निभायी। इस प्रक्रिया में उन्हें अ-हस्तक्षेपकारी राज्य के सिद्धांत, इंद्रियानुभवावद, उपयोगितावाद और सामाजिक डार्विनवाद से वैचारिक लोहा लेना पड़ा। स्वतंत्रता की अवधारणा को सकारात्मक और नकारात्मक स्वतंत्रताओं में बाँट कर समझने की शुरुआत ग्रीन ने ही की थी। ईसैया बर्लिन ने आगे चल कर इसी विमर्श को एक भिन्न नज़रिये से नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। ग्रीन राजनीतिक दायित्व के सिद्धांतकार भी थे। उनके सूत्रीकरणों ने ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों में राजनीतिशास्त्र के अध्ययन पर गहरा असर डाला। दरअसल उनके विचारों को उदारतावादी चिंतन के एक अलग स्कूल के रूप में भी देखा जाता है। राजनीतिक विचार के क्षेत्र में बीसवीं सदी के मध्य तक कई उल्लेखनीय विद्वान ख़ुद को उनसे प्रभावित बताते रहे जिनमें बरनार्ड बोसेनक्वेट, एल.टी. हॉबहाउस और जे.ए. हॉब्सन के नाम प्रमुख हैं। केवल 46 वर्ष तक जीवित रहने वाले ग्रीन की ज़्यादातर रचनाएँ उनके देहांत के बाद प्रकाशित हुईं। 1882 में प्रकाशित *लैक्चर्स ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ़ पॉलिटिकल ऑब्लिगेशन* और 1883 में प्रकाशित *प्रोलेगोमेना टू एथिक्स* उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

थॉमस हिल ग्रीन का जन्म बरकिन, यॉर्कशायर में हुआ था। वे ख़ुद को ओलिवर क्रामवेल का वंशज मानते थे। ऑक्सफ़र्ड के बैलियल कॉलेज में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। ईसाई धर्म में गहरी आस्था रखने वाले ग्रीन ने बेउर द्वारा रचित *हिस्ट्री ऑफ़ द क्रिश्चियन चर्च* का अनुवाद भी किया, लेकिन इसी के साथ छात्रों के चर्च जाने की अनिवार्यता भी उन्होंने ही ख़त्म करायी। उदारतावादी राजनेता जॉन ब्राइट के प्रशंसक ग्रीन पर जर्मन दार्शनिकों कांट और हीगेल का प्रभाव था। चुनाव सुधारों के समर्थक ग्रीन को 1874 में नगर परिषद के चुनाव में हार का मुँह देखना पड़ा। उनकी पुस्तक लिबरल लेजिस्लेशन ऐंड फ्रीडम ऑफ़ कांट्रेक्ट में उन्होंने श्रम, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में राज्य की भूमिका की वकालत की।

ग्रीन का ख़याल था कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और घरेलू सार्वजनिक नीति के लिए दार्शनिक रूप से सक्षम ऐसे सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाना चाहिए जिनके आधार पर मतदान के अधिकार ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को दिया जा सके, एवं शिक्षा और सामाजिक विधि-निर्माण का और विस्तार हो सके। लेकिन साथ में वे यह भी मानते थे कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में दार्शनिक और राजनीतिक संकटों का एक साथ सामना कर रहे उदारतावाद के बस में यह नहीं है। दार्शनिक समस्याओं की जड़ में इंद्रियानुभववाद और उपयोगितावाद का दिवालियापन है। इंद्रियानुभववाद की परम्परा बुद्धिसंगत मानवीय आचरण का कोई विश्वस्त ब्योरा पेश करने में नाकाम रही है, इसलिए उससे ज्ञान का कोई सक्षम सिद्धांत नहीं निकलता। उपयोगितावाद का विरोध करते हुए ग्रीन ने कहा कि नागर समाज की संकल्पना केवल ऐसे लोगों के जमावड़े के तौर पर नहीं की जा सकती जिनकी दिलचस्पी केवल स्व-हित में हो और जो केवल अपने सुख की प्राप्ति में लगे हों। कांट और हीगेल से प्रभावित भाववादी नज़रिये के आधार पर ग्रीन ने मानवीय जीवन और उसके उद्देश्यों को नैतिक आवेश से सम्पन्न क़रार दिया। वे इस दावे को तथ्यात्मक रूप से ग़लत मानते थे कि मनुष्य उत्तम जीवन

थॉमस हिल ग्रीन (1836–1882)

की किसी निजी कसौटी के तहत सक्रिय रहते हुए संतोषजनक जीवन बिता सकता है। उनकी निगाह में यह प्रश्न निरर्थक था कि पहले व्यक्ति आता है या समाज? उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति और समाज का संबंध काफ़ी पेचीदा है और जिस तरह व्यक्तियों के बिना समाज का अस्तित्व नहीं हो सकता, उसी तरह समाज के बिना व्यक्तियों का वजूद सम्भव नहीं है। ग्रीन ने दावा किया कि मनुष्य की इयत्ता एक सामाजिक इयत्ता है। मनुष्य अपनी पूर्णता और ख़ुशी समुदाय के अंग के तौर पर प्राप्त करता है, इसीलिए नागरिकता के समुचित सिद्धांत का स्रोत सदस्यता का विचार होना चाहिए, न कि समझौतापरक संस्थात्मकता। ग्रीन चाहते थे कि राजनीति में सहभागिता एक नागरिक-दायित्व की तरह होना चाहिए।

ग्रीन मानते थे कि राजनीति और नीतिशास्त्र का उद्देश्य एक ही है : नैतिक चरित्र से लैस व्यक्तियों का विकास। यही है वह कसौटी है जिस पर विभिन्न क़ानूनों और संस्थाओं का आकलन किया जाना चाहिए। अगर कोई बंदोबस्त नागरिकों के किसी भी हिस्से के नैतिक विकास में बाधा डाल रहा है तो व्यवस्था में सुधार करके उस रुकावट को दूर करना ज़रूरी है। अपनी पुस्तक *लैक्चर्स ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ़ पॉलिटिकल ऑब्लीगेशन* में भी ग्रीन ने स्पष्ट रूप से कहा कि क़ानून के ज़रिए व्यक्ति को कुछ ज़िम्मेदारियाँ पूरी करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, लेकिन कोई भी क़ानून लोगों को नैतिक नहीं बना सकता। नैतिकता स्वेच्छा का ही परिणाम हो सकती है, इसलिए क़ानून का इस्तेमाल ऐसी परिस्थितियाँ बनाने के लिए किया जाना चाहिए जिनके तहत व्यक्ति अपनी उसी स्वेच्छा पर अमल कर सके। ऐसे क़ानून कम से कम होने चाहिए जो लोगों को कुछ करने से प्रतिबंधित करते हों। हाँ, उन कामों को क़ानून के ज़रिये ज़रूर रोका जाना चाहिए जो समाज के वजूद के लिए ही हानिकारक हों।

इसी मक़ाम पर ग्रीन स्वतंत्रता के नकारात्मक संस्करण से अलग हटते हुए सकारात्मक संस्करण पर ज़ोर देते नज़र आते हैं। उपयोगितावादी दार्शनिक जेरेमी बेंथम की मान्यता थी कि जो नियम व्यक्ति को अपनी मर्ज़ी पर चलने से रोकता है, वह अनिवार्यत: बुरा क़ानून है। ग्रीन का कहना था कि क़ानून की ऐसी समझ तो सरकार को उसके इच्छित उद्देश्य की सिद्धि ही नहीं करने देगी और नैतिक जीवन को प्रोत्साहित करने वाले सभी तरह के सकारात्मक सुधारों पर विराम लग जाएगा। ज़ाहिर है कि ग्रीन उदारतावादियों के इस यक़ीन से सहमत थे कि सरकार का मुख्य काम स्वतंत्रता के दायरे को अधिकतम करना है। इसका मतलब होगा बंदिशों को कम से कम करना। लेकिन क़ानून का काम केवल निषेधात्मक ही नहीं हो सकता। इस लिहाज़ से ग्रीन की स्वतंत्रता संबंधी धारणा ईसैया बर्लिन द्वारा की गयी नकारात्मक स्वतंत्रता की पैरोकारी से भिन्न है।

ग्रीन उपयोगितावाद के इस आग्रह से भी सहमत नहीं थे कि स्वतंत्र केवल वही व्यक्ति है जो बेपरवाह हो कर अपने सुखों की प्राप्ति में जुटा हुआ है। उनका कहना था कि ऐसा करने वाला देखने में स्वतंत्र लग सकता है, पर वह असल में अपने ही रुझानों और कामनाओं की दया पर निर्भर रहता है। स्वतंत्रता विवेकसम्मत ही हो सकती है। उन्होंने स्वतंत्रता की परिभाषा भी दी : 'उत्तम जीवन के साझा लक्ष्य के लिए सभी व्यक्तियों की शक्तियों को बंधन-रहित करना'।

ग्रीन अ-हस्तक्षेपकारी राज्य के उसूल को नापसंद करते थे, लेकिन इसका मतलब हस्तक्षेपकारी राज्य की पैरोकारी नहीं था। वे राज्य को सीमित हस्तक्षेप का अधिकार देने के पक्ष में थे, बशर्ते वह सकारात्मक हो। ग्रीन ने शराब पीने पर सीमाएँ आरोपित करने की तरफ़दारी की। वे शिक्षा और जन-स्वास्थ्य में सरकार की दख़लअंदाज़ी चाहते थे। ग्रीन ने राज्य के हस्तक्षेप का विस्तृत कार्यक्रम देने से परहेज़ किया जिसके कारण उनके विचारों में एक धुँधलापन बना रहा। लेकिन उन्होंने अपने विमर्श के ज़रिये दिखाया कि उदारतावाद का दायरा कितना विस्तृत हो सकता है और उसमें किस हद तक सामाजिक सरोकारों का समावेश सम्भव है। ग्रीन के कारण ही उदारतावाद को आगे चल कर संकीर्ण व्यक्तिवाद और स्वतंत्रता के नकारात्मक संस्करण से छुटकारा मिल सका। उन्होंने एक तरफ़ तो निजी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का बचाव किया, और दूसरी तरफ़ उन्हें समानता और सामुदायिकता के साथ जोड़ा।

देखें : अधिकार, अधिकार : सैद्धांतिक यात्रा, अरस्तू, अफलातून, अनुदारतावाद, अराजकतावाद, अन्य-अन्यीकरण, उदारतावाद, उपयोगितावाद, एडमण्ड बर्क, क्रांति, ज्याँ-ज़ाक रूसो, जॉन लॉक, जेरेमी बेंथम, जॉन स्टुअर्ट मिल, जॉन रॉल्स, जोहान गॉटफ्रीड हर्डर, डेविड ह्यूम, थॉमस हॉब्स, थॉमस पेन, न्याय, न्याय : नारीवादी आलोचना, न्याय : रॉल्स का सिद्धांत, नागरिकता, नागरिकता : अन्य परिप्रेक्ष्य-1 और 2, नागर समाज, पनोप्टिकॉन, फ्रेड्रिख़ वॉन हायक, बुद्धिवाद, माइकेल जोसेफ़ ओकशॉट, माइकिल वाल्ज़र, मिशेल पॉल फ़ूको-1 और 2, यूटोपिया, राजनीतिक दर्शन के नारीवादी आयाम, रॉबर्ट नॉज़िक, राज्य-1 और 2, विल किमलिका, स्वतंत्रतावाद, सर्वसत्तावाद, सम्प्रभुता, समाजवाद, सरकार और सरकारियत-1 और 2.

संदर्भ

1. एम. रिचर (1983), *द पॉलिटिक्स ऑफ़ कांशेंस : टी.एच. ग्रीन ऐंड हिज़ एज,* युनिवर्सिटी प्रेस ऑफ़ अमेरिका, लैनहैम, एमडी.
2. आर.एल. नेटिलशिप (सम्पा.) (1985-88), *द वर्क्स ऑफ़ थॉमस हिल ग्रीन,* तीन खण्ड, लोंगमेंस, लंदन.
3. पी. निकल्सन (1989), *द पॉलिटिकल फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ ब्रिटिश आइडियलिस्ट्स,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

— अभय कुमार दुबे

थियोडोर लुडविग वीज़ेनग्रंड एडोर्नो

(Theodor Ludwig Wiessengrund Adorno)

दार्शनिक, समाजविज्ञानी और संगीत के प्रखर अध्येता थियोडोर लुडविग वीज़ेनग्रंड एडोर्नो (1903-1969) मार्क्सवादी विद्वत्ता और समाज-विज्ञान की अध्ययन पीठ फ्रैंकफ़र्ट स्कूल के विद्वान थे। अनुवाद के अभाव में एक समय तक उनका कृतित्व बाक़ी दुनिया भर के लिए अपरिचित बना रहा। लेकिन कार्ल पॉपर और मार्टिन हाइडेगर की दार्शनिक निष्पत्तियों की मर्मभेदी आलोचना के ज़रिये एडोर्नो साठ के दशक में ही पश्चिम के बौद्धिक जगत के लिए एक ज़रूरी संदर्भ बन चुके थे। एडोर्नो का विशद, बहुस्तरीय और विषयों की पारम्परिक चौहद्दी के आर-पार जाने वाला कृतित्व पश्चिम की दार्शनिक परम्पराओं, ज्ञान मीमांसा, पूँजीवाद की सामाजिक गतिकी तथा उसके सांस्कृतिक निहितार्थों को नये सिरे से देखने और उनके मूल प्रस्तावों को दुबारा खँगालने की तजवीज़ करता है। एडोर्नो अपने कृतित्व में एक अंतरविषयकता गढ़ते हुए प्रतिपाद्य के अनचीन्हे रेशों को अनावृत्त करते हैं। उनके अध्येताओं के अनुसार इस अर्थ में एडोर्नो महज़ समाज, संस्कृति के टीकाकार न रहकर विचार के ठीक उस धरातल तक पहुँचते हैं जहाँ उनके विषय की मूल अंतर्वस्तु स्थित होती है।

जर्मन-यहूदी घर में पैदा हुए थियोडोर एडोर्नो के पिता एक अमीर शराब व्यापारी थे। उन्होंने फ्रैंकफ़र्ट विश्वविद्यालय दर्शन, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। नाज़ी शासन के यहूदी-विद्वेष के कारण एडोर्नो को 1934 में देश छोड़ना पड़ा। विस्थापन के उस दौर में उन्होंने ऑक्सफ़र्ड और न्यूयॉर्क में प्रवास किया। इन्हीं जगहों पर रहते हुए उन्होंने ज्ञानमीमांसा और तत्त्वदर्शन के क्षेत्र में कालजयी योगदान करने वाली *डायलेक्टिक ऑफ़ एनलाइटनमेंट, फिलॉसफ़ी ऑफ़ न्यू म्यूजिक, द अथोरिटेरिअन पर्सनॉलिटी* तथा *मिनिमा मॉरैलिया* जैसी यशस्वी कृतियों की रचना की। इन्हीं वर्षों के दौरान उन्होंने बाजारू संस्कृति (मास कल्चर) और संस्कृति उद्योग का धारदार आलोचना शास्त्र विकसित किया। 1949 में जर्मनी लौटने के बाद एडोर्नो ने हसर के घटना-क्रियाशास्त्र से संवाद करते हुए *अगेंस्ट एपिस्टमोलॅजी* और साहित्य सिद्धांत के क्षेत्र में *नोट्स टू लिटरेचर* जैसी कृतियों की रचना की। जीवन के अंतिम दशक में उन्होंने संगीत की समीक्षा, साहित्य, हीगेल और अस्तित्ववादी दर्शन, समाजशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र आदि पर सुगठित लेखन किया।

एडोर्नो के कृतित्व में *डायलेक्टिक ऑफ़ एनलाइटनमेंट* विशिष्ट स्थान रखती है। फ्रैंकफ़र्ट स्कूल के एक अन्य महत्त्वपूर्ण विद्वान मैक्स होर्ख़ाइमर के साथ संयुक्त परियोजना के रूप में लिखी गयी यह कृति उत्तर-आधुनिकतावाद के मुहावरे की प्राण-प्रतिष्ठा से बहुत पहले आधुनिक विज्ञान, चिकित्सा और उद्योग की संरचनाओं पर गहरे सवाल उठा चुकी थी। निर्वासन के दौरान लिखी गयी यह किताब दूसरे विश्व-युद्ध में भस्मीभूत हुए आधुनिक पश्चिम की नियति पर विचार करते हुए ज्ञानोदय की समूची परियोजना को प्रश्नांकित करती है।

एडोर्नो कहते हैं कि ज्ञानोदय के बारे में हमेशा यह माना जाता रहा कि वह मनुष्य को भय से मुक्ति दिलाकर उसे अपनी नियति का नियंता बना देगा, लेकिन ज्ञान के उदय से आभासित यह दुनिया विनाशलीला का पर्याय बन गयी है। होर्ख़ाइमर के साथ एडोर्नो इस बात की तह में जाते हैं कि लोगों को अज्ञान, बीमारियों और मशीनी काम से मुक्ति दिलाने का वादा करते-करते यह परियोजना आख़िर किस तरह एक ऐसी दुनिया के निर्माण में सहभागी बनती गयी जिसमें जनता अपनी मर्ज़ी से फ़ासीवाद, जनसंहार के तर्क और व्यापक विध्वंस करने वाले हथियारों के निर्माण में

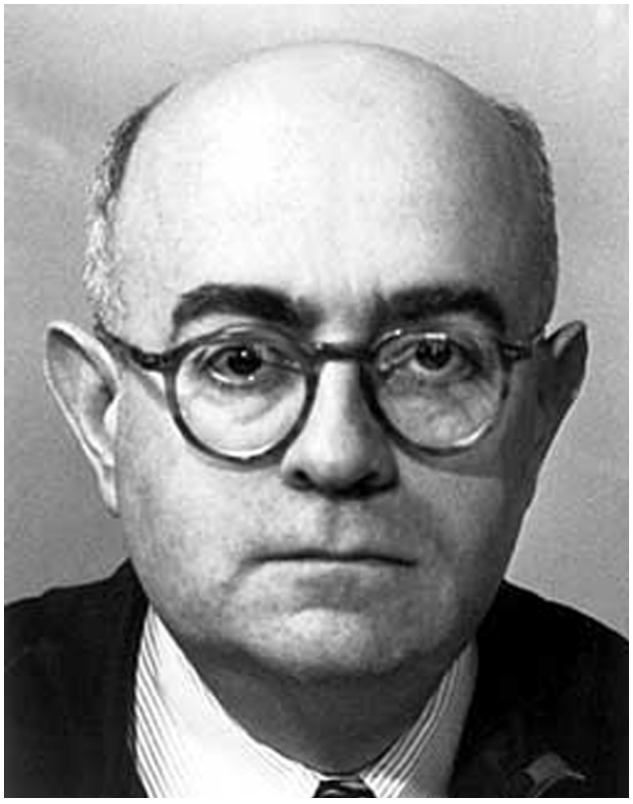
थियोडोर लुडविग वीज़ेनग्रंड एडोर्नो (1903–1969)

शामिल होती चली गयी। एडोर्नो के मुताबिक़ यह सब तर्क की पराजय मात्र नहीं बल्कि उसका इर्रैशनल हो जाना है।

लेकिन एडोर्नो इसके लिए केवल आधुनिक विज्ञान या विज्ञानवाद को ज़िम्मेदार नहीं मानते। उनके मुताबिक़ तर्कबुद्धि पर आश्रित प्रगति का तर्कहीन अवनति या पश्च-प्रवाह में बदल जाना एक पुराना मर्ज़ है। एडोर्नो और होर्ख़ाइमर हिब्रू और यूनानी दार्शनिकों के हवाले से बताते हैं कि यह प्रवृत्ति बहुत पहले से मौजूद रही है। इसलिए यह देखना दिलचस्प है कि एडोर्नो जब आधुनिकता की आलोचना करते हैं तो वह प्राक्-आधुनिकता की भी आलोचना होती है। लिहाज़ा उत्तर-आधुनिकता का मतलब प्राक्-आधुनिकता के तौर-तरीक़ों की ओर लौटना नहीं हो सकता, क्योंकि इससे आधुनिकता की विकृतियाँ ख़त्म न हो कर कोई अलग शक्ल अख़्तियार कर लेती हैं। इसलिए एडोर्नो का ज़ोर इस बात पर है कि जब तक समूचे समाज का रूपांतरण नहीं होता तब तक ऐसी विकृतियाँ किसी न किसी रूप में मौजूद रहेंगी।

ज्ञानोदय की इस पीठिका पर विहंगम दृष्टि डालते हुए एडोर्नो यह सूत्रीकरण भी करते हैं कि समाज और संस्कृति आपस में मिलकर एक ऐतिहासिक सम्पूर्णता का निर्माण करती हैं। उनका समीकरण कुछ ऐसा है कि समाज में स्वतंत्रता का संधान संस्कृति में ज्ञानोदय की खोज से अलग नहीं किया जा सकता। इसे उल्टी तरफ़ से देखें तो यह भी कहा जा सकता है कि समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और क़ानून की जिन संरचनाओं में मनुष्य जीता है उनमें स्वतंत्रता की अनुपस्थिति दर्शन, कलाओं, धर्म आदि के क्षेत्रों में भी व्यतिक्रम पैदा करती है। इस संदर्भ में एडोर्नो नाज़ियों के यातना-शिविरों को अचानक पैदा हो जाने वाली घटना न मानकर आधुनिक पश्चिम में घटित विपर्यय का प्रतीक मानते हैं।

आधुनिक पश्चिम के इस संकट के पीछे एडोर्नो आधिपत्य की उस संरचना को ज़िम्मेदार मानते हैं जिसमें मनुष्य एक तरफ़ प्रकृति के उपर हावी हो गया है, तो दूसरी तरफ़ मनुष्य की अपनी प्रकृति पर दूसरों का वर्चस्व क़ायम हो गया है। आधिपत्य की इस प्रक्रिया का अंतिम परिणाम यह हुआ है कि मनुष्यों के ही एक समूह ने समाज पर वर्चस्व क़ायम कर लिया है। एडोर्नो के मुताबिक़ आधिपत्य की यह त्रिआयामी संरचना इसलिए आसन्न हुई क्योंकि मनुष्य अज्ञात से उत्पन्न एक विवेकहीन भय में जीता है। वह इस भय से तभी मुक्त हो पाता है जब उसके लिए अज्ञात पूरी तरह निशेष हो जाए। इस तरह एडोर्नो एक चमत्कृत कर देने वाली निष्पत्ति पर पहुँचते हैं और ज्ञानोदय को मिथकीय भय का एक रैडिकल रूप साबित करते हैं। उनके अनुसार आधुनिक पश्चिम में विध्वंस के औज़ार पहले के मुक़ाबले चाहे कितने भी महीन और सटीक हो गये हों या कि शोषण के रूप दासता के नग्न रूपों से ज़्यादा बारीक़ हो गये हों, लेकिन सत्य यह है कि उनके पीछे भय से प्रेरित और उस पर टिकी आधिपत्य की यही संरचना काम करती है।

आधुनिकता की इस सर्वांग आलोचना को देखकर कई विद्वानों को यह लगा था कि जैसे एडोर्नो ज्ञानोदय की समूची परिघटना को सिरे से ख़ारिज कर रहे हैं। लेकिन आधुनिकता की इस नकारात्मक व्याख्या का लक्ष्य इतिहास के सार्वभौम पतन का महावृत्तांत पेश करना नहीं था। अपनी इस पड़ताल में एडोर्नो असल में दार्शनिक तर्कों, समाजशास्त्रीय चिंतन, साहित्य की समीक्षा तथा सांस्कृतिक टीकाओं को अनूठे ढंग से संयोजित करके पश्चिम के इतिहास का एक दोहरा परिप्रेक्ष्य रच रहे थे। दोहरे परिप्रेक्ष्य की मूल थीसिस यह है कि पहले जिसे मिथक मानकर ख़ारिज कर दिया गया था वह ज्ञानोदय की शक्ल में लगातार मौजूद था और ज्ञानोदय स्वयं मिथकशास्त्र की ओर क़दमताल कर था। पहली थीसिस के आधार पर एडोर्नो यह तजवीज़ करते हैं कि सेकुलरीकरण की ताक़तों द्वारा पुराने कर्मकाण्डों, धार्मिक रीतियों और दार्शनिक सूत्रों को ग़ैर-ज़रूरी तथा अवांछित क़रार देने के बावजूद ज्ञानोदय की प्रक्रिया में उनका एक निश्चित योगदान रहा है। उनकी दूसरी थीसिस उन्हें सेकुलरीकरण की आधुनिक शक्तियों में निहित वैचारिक व विध्वंसक प्रवृत्तियों की शिनाख़्त करने की गुंजाइश देती है। ग़ौरतलब है कि

एडोर्नो का यह दोहरा परिप्रेक्ष्य न तो उन्हें यह कहने की तरफ़ ले जाता है कि ये आधुनिक शक्तियाँ प्रगतिशील या ज्ञानमूलक नहीं है और न ही वह उन्हें यह कहने के लिए मजबूर करता है कि आधुनिकता की शक्तियों ने जिन पुरानी संकल्पनाओं को अपदस्थ किया है वे ख़ुद अनिवार्य रूप से वैचारिक और विध्वंसक नहीं थीं।

एडोर्नो परवर्ती पूँजीवाद (लेट-कैपिटलिज़म) की सामाजिक सैद्धांतिकी के निर्माण में मार्क्स की बुनियादी निष्पत्तियों को प्रस्थान बिंदु बनाते हैं। हालाँकि एडोर्नो मार्क्स के पण्य-पूजा के सिद्धांत का समर्थन करते हैं लेकिन साथ ही उनका यह भी मानना है कि मार्क्स की यह आलोचना अपूर्ण रह जाती है। उनका कहना है कि पूँजीवाद की संरचना में मार्क्स के बाद कई महत्त्वपूर्ण बदलाव आये हैं जिन्हें उत्पादन-शक्तियों और उत्पादन-संबंधों, राज्य और अर्थव्यवस्था के आपसी संबंधों, वर्ग और वर्गीय चेतना के समाजशास्त्र, विचारधारा की प्रकृति तथा उसके प्रकार्यों आदि में लक्षित किया जा सकता है। लूकाच के चिंतन की अनुक्रिया और तीसरे व चौथे दशक में फ्रैंकफ़र्ट स्कूल से शुरू होने वाली अंतरविषयक परियोजनाओं व बहसों से प्रेरित एडोर्नो का यह विश्लेषण दरअसल इस बात की ओर संकेत करता है कि मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुओं और उसके द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं के एक स्वायत्त और स्वतंत्र शक्ति में बदल जाने की परिघटना पूँजीवाद के परवर्ती चरण में पहले से ज़्यादा गुम्फ़ित और ग्रंथित हो गयी है।

यहाँ बीसवीं सदी के दूसरे दशक में लूकाच के उस सूत्रीकरण पर दुबारा नज़र डालना मुनासिब होगा कि पूँजीवाद समाज के कई घटकों में सिर्फ़ एक घटक होने की स्थिति से बढ़ कर उसका सांगठनिक केंद्र बन गया है। यही पहलू वस्तुओं को समाज की सभी संस्थाओं में एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में पैठने की सहूलियत प्रदान करता है। ग़ौरतलब है कि शुरुआती दौर में ख़ुद एडोर्नो इस प्रतिपादन को स्वीकार करते थे लेकिन वे लूकाच के इस आत्मविश्वास में सहभागी नहीं बने कि अंततः क्रांतिकारी मज़दूर वर्ग रीफ़िकेशन की इस नकारात्मक परिघटना का अतिक्रमण करने में सफल रहेगा।

एडोर्नो अपने समकालीन अर्थशास्त्री फ्रेड्रिख़ पोलॉक के इस सिद्धांत से सहमति जताते हैं कि राज्य ने आर्थिक सत्ता को अपने हाथों में लेकर राजकीय पूँजीवाद का एक नया रूप गढ़ दिया है जिसमें राजनीतिक और आर्थिक शक्ति पहले से ज़्यादा एकमेक हो गयी हैं। लेकिन एडोर्नो तमाम सहमति के बावजूद इस बात पर ज़ोर देते हैं कि राजसत्ता और अर्थसत्ता की इस निकटता से पूँजीवादी शोषण का आर्थिक चरित्र नहीं बदल जाता। उनके मुताबिक़ शोषण की यह प्रक्रिया मार्क्स के जमाने से कहीं ज़्यादा अमूर्त, व्यापक और तीक्ष्ण हो गयी है।

समाज-विज्ञानों के दायरे में एडोर्नो का संस्कृति-अध्ययन एक नयी प्रस्थापना की तरह देखा जाता है। उनका सांस्कृतिक अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि परवर्ती पूँजीवाद ने संस्कृति के विभिन्न रूपों को किस तरह प्रभावित किया है। इस संबंध में *डायलेक्टिक ऑफ़ एनलाइटनमेंट* में संकलित उनका एक अध्याय द *कल्चर इंडस्ट्री* समाज-विज्ञानों के क्षेत्र में एक परिघटना की हैसियत हासिल कर चुका है। अपने इस अध्ययन में एडोर्नो प्रतिपादित करते हैं कि संस्कृति का उद्योग कला को कुछ इस तरह नियोजित करता है कि उसे पण्य का रूप दिया जा सके। एडोर्नो के अनुसार इस प्रक्रिया में कला की स्वायत्तता नष्ट हो जाती है। कला को बाज़ार के नज़रिये से देखने के कारण संस्कृति उद्योग उसे प्रयोजनमूलक बना देता है, जबकि कला की स्वायत्तता का केंद्रीय तत्त्व उसकी उन्मुक्तता है। एडोर्नो कहते हैं कि सांस्कृतिक वस्तुओं पर बाज़ार की माँग हावी होने से उनकी आंतरिक आर्थिक संरचना पूरी तरह बदल जाती है। ऐसे में कला समाज के हस्तक्षेप से मुक्त न रहकर अपनी नैसर्गिक उपयोगिता से हीन हो जाती है। इस तरह संस्कृति का उद्योग कला के विभिन्न रूपों को उनमें निहित उपयोगिता के मूल्य से रिक्त करके उन पर विनिमय मूल्य थोप देता है। उल्लेखनीय है कि कला के बाज़ारू रूपों और लोकप्रिय संस्कृति के अनेक पैरोकार एडोर्नो के इस विश्लेषण को शंका की दृष्टि से देखते रहे हैं। लेकिन एडोर्नो की मुख्य दलील यह है कि संस्कृति के क्षेत्र में पण्यीकरण की यह विराट प्रक्रिया महज़ वस्तुओं की संरचना में आये बदलावों को ही व्यक्त नहीं करती बल्कि पूँजीवाद की संरचना में उभर रहे बदलावों को भी ज़ाहिर करती है।

देखें : अस्तित्ववाद, आत्मनिष्ठता-वस्तुनिष्ठता, इयत्ता, इमैनुएल कांट, इंद्रियानुभववाद, ईसैया बर्लिन, उत्तर-आधुनिकतावाद, उदारतावाद, कल्पित समुदाय, घटनाक्रियाशास्त्र और एडमण्ड हसर, चेतना, जॉन लॉक, ज़ाक लकाँ, ज्याँ-फ्रांस्वा ल्योतर, ज्याँ-पॉल सार्त्र, ज़ाक देरिदा, तत्त्वमीमांसा और अस्तित्वमीमांसा, तात्त्विकतावाद, द्वैतवाद, फ्रेड्रिख़ नीत्शे-1 और 2, बुद्धिवाद, भौतिकवाद, मनोविश्लेषण, मिशेल पॉल फ़ूको-1 और 2, युरोपीय पुनर्जागरण, युरोपीय ज्ञानोदय, रेने देकार्त, लुई अलथुसे, सोरेन आबी कीर्केगार्द, संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद, ज्ञानमीमांसा।

संदर्भ

1. बी. ओकॉनर (सम्पा.), *द एडोर्नो रीडर,* ब्लैकवेल, ऑक्सफ़र्ड, 2000
2. एस. जारविस (1998), *एडोर्नो : अ क्रिटिकल इंट्रोडक्शन,* रॉटलेज, न्यूयॉर्क.
3. डी. कुक (सम्पा.) (1998), *थियोडोर एडोर्नो : की कंसेप्ट्स,* एक्यूमेन, डरहम.
4. ई. लन (1998), *मार्क्सिज़म ऐंड मॉडर्निटी : एन हिस्टोरिकल स्टडी ऑफ़ लूकाच, ब्रेख्त, बेंजामिन ऐंड एडोर्नो,* युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले, 1998

— नरेश गोस्वामी